प्राक्कथन

मन्दिरों के प्रति कार्य एवं स्वरूप विकास का इतिहास सुदीर्घ है । दुर्भाग्यवश मन्दिरों के विकास का स्पष्ट स्वरूप गुप्तकाल से पूर्व उपलब्ध नहीं होता —— मात्र कतिपय साहित्यिक तथ्य ही समक्ष आते हैं । 'प्रासाद' अथवा 'मन्दिर' शब्द की व्याख्या करते हुए मि0 मैक्डानल ने अपनी पुस्तक "वैदिक इंडैक्स" में उसे 'ऊँचे स्थान पर निर्मित अधिष्ठान बताया है ।' वैदिक एवं वैदिकेतर युग में जनसमुदाय ईश्वर को सर्वोच्च मान उनकी उपासना को उद्यत् हुआ, किन्तु ईश्वर की उपासना के लिए प्रतिमा की आवश्यकता थी एवं प्रतिमा की प्राण–प्रतिष्ठा के लिए मन्दिर अथवा देवालय की ।

अतः गुप्तकाल आते–आते वैष्णव एवं शैव देवालयों का निर्माण एवं उनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गयी कि दो–तीन शताब्दियों में ही मन्दिर वास्तु–शिल्प के अनेक चरण विकसित हो गये । गुप्तकाल में निर्मित मृण्कला का सर्वोच्च उदाहरण भीतरगाँव (उ0 प्र0) का 'विष्णु मन्दिर' है । विभिन्न विद्वानों के अनुसार इसका निर्माण चौथी से आँठवी शता0 के मध्य का माना जाता है । मृण्मन्दिर निर्माण की इस परम्परा का निर्वाह करते हुए 12वीं शता0 में प0 बंगाल में मन्दिरों का निर्माण आरम्भ हुआ जो कि 17वीं एवं 18वीं शता0 के मध्य पूर्ण विकसित होकर भिन्न–भिन्न शैलियों में हमारे समक्ष आते हैं ।

प0 बंगाल में मृण्मन्दिरों के निर्माण की जो परम्परा 12वीं शता0 में आरम्भ हुई, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् लुप्त प्रायः दिखाई देती है । अब प्रश्न यह उठता है कि प0 बंगाल में मन्दिर मिट्टी से ही क्यों बनाये गये, और वो भी इतनी अधिक शैलियों एवं इतनी अधिक संख्या में ? द्वितीय प्रश्न उठता है कि मन्दिर एवं मूर्तियों के निर्माण में वास्तु एवं मूर्ति शिल्प के नियमों का पालन क्यों नहीं किया गया तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् मन्दिर निर्माण की प्रक्रिया यकायक रूक क्यों गयी ?

अतः ऐसे ही कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों को ध्यान में रखकर "प0 बंगाल के मृण्मय मन्दिर (वीरभूम, बाँकुड़ा)" विषय पर शोधकार्य करके वीरभूम एवं बाँकुड़ा के कुछ अचर्चित एवं कुछ विशिष्ठ मृण्मन्दिरों को सामने लाने का प्रयास किया है । जिसे मैंने काल के आधार पर क्रम में न लगाकर मृण्मयी उत्कीर्ण कार्य के अनुरूप क्रमानुसार रखा है। यह शोध प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभाजित है । प्रथम अध्याय में मृण्कला का तात्पर्य एवं उसके वर्गीकरण की चर्चा की है । अध्याय द्वितीय

के अन्तर्गत मृण्मय मन्दिरों एवं मृण्मूर्तियों के कालानुसार विकास एवं इतिहास का वर्णन किया गया है । अध्याय तृतीय एक विस्तृत अध्याय है जिसके 'अ', 'ब', 'स', 'द' चार भाग हैं । प्रथम भाग में सर्वप्रथम प0 बंगाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उल्लेख किया गया है । जिसके पश्चात् वीरभूम एवं बाँकुड़ा जिलों की स्थिति, क्षेत्र विस्तार, इनके नामों की उत्पत्ति तथा इनके इतिहास का विवेचन किया गया है , जिससे जनमानस को मन्दिरों के स्थान एवं उनके इतिहास का सभ्यबोध हो सके तथा सभी उसका पूर्ण आनन्द उठाते हुए उसे हृदयांगम कर सकें । इसके पश्चात् इस अध्याय में प0 बंगाल में प्रचलित मृण्मन्दिरों की प्रमुख आठ शैलियों का वर्णन तथा इन मन्दिरों के प्रमुख उत्कीर्ण विषय 'दशावतार' का विवेचन किया गया है । जिसमें विष्णु के दस अवतारों का उल्लेख किया गया है । उत्कीर्ण विषय के वर्णन के उपरान्त वीरभूम के गोपाल लक्ष्मी नारायण मन्दिर, नारायण मन्दिर, जोड़ शिव मन्दिर, जयदेव, गौरांग महाप्रभु मन्दिर, लक्ष्मी जनार्दन मन्दिर, वकुलताला शिव मन्दिर तथा शिव मन्दिर के उत्कीर्ण कार्य का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है ।

द्वितीय भाग में वीरभूम के इन मृण्मन्दिरों की प्रमुख विशेषताएँ वर्णित हैं ।

अध्याय के तृतीय भाग में बाँकुड़ा जिले के विष्णुपुर शहर के श्यामराय मन्दिर, जोड़-बंगला मन्दिर, मदन मोहन मन्दिर, रासमंच मन्दिर, राधाश्याम मन्दिर, राधामाधव मन्दिर तथा जोड़ मन्दिर समूह के उत्कीर्ण कार्य का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है ।

अध्याय के चतुर्थ भाग में बाँकुड़ा के इन मृण्मन्दिरों की विशेषताएँ वर्णित की गयी हैं ।

शोध ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय तुलनात्मक अध्याय है जिसमें प0 बंगाल के मन्दिरों के साथ भारत के अन्य स्थानों, जिसमें 'विष्णु मन्दिर' भीतरगाँव (कानपुर उ0प्र0), 'लक्ष्मण मन्दिर' (सीरपुर), 'शिव मन्दिर' (अहिच्छत्रा), 'रंग महल' (राजस्थान) आदि मन्दिरों के साथ तथा बंगला देश के 'पहाड़पुर' 'महास्थान' के बौद्ध स्तूपों के अतिरिक्त कान्ता जी, वैष्णव मन्दिर ——— के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया है ।

अन्तिम अध्याय में वर्तमान समय में इन प्राचीन मन्दिरों का स्थान तथा उपयोगिता का वर्णन किया गया है। मुझे विश्वास है कि इस शोध कार्य द्वारा मैंने मन्दिरों के कलात्मक स्वरूप को सामने लाने अथक प्रयास किया है ।